

दलित राजनीति का विकास, चेतना एवं समस्याएँ : एक ऐतिहासिक अवलोकन

मारकण्डेय सिंह

भारत में दलित राजनीतिक विकास को हम अम्बेडकर युग एवं उत्तर-अम्बेडकर युग के रूप में देख सकते हैं। भारत के दलित समुदाय को प्राचीन काल से ही सामाजिक संस्था, आर्थिक व्यवस्था एवं राजनीतिक सत्ता से वंचित रखा गया, तथा सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक रूप से शोषित किया गया। हिन्दूवादी मानसिकता एवं व्यवस्था ने दलितों को कभी स्वीकारा नहीं। हिन्दू वर्ण-व्यवस्था या जाति-व्यवस्था ने दलितों को निम्नतम व असृश्य माना। इस प्रकार, अंततः दलितों ने अपने अधिकारों व स्वाभीमान के लिए हिन्दू सामंतवादी वर्ण-व्यवस्था या जाति-व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाई। मध्यकालीन भारत में क्रांतिकारी कबीर, संत रविदास, तुकाराम, चोखामेला आदि ने जाति-व्यवस्था की आलोचना की तथा एक समतावादी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना का प्रयास किया। भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के पश्चात् राजा राममोहन राय, ज्योतिबा फूले, शाहूजी महाराज, नारायण स्वामी आदि ने सामाजिक एवं शैक्षिक आन्दोलन करके वंचितों व दलितों को सामाजिक व्यवस्था में लाने का प्रयास किया; लेकिन ये सामाजिक आन्दोलन दलितों को उचित स्थान दिलाने में असफल रहे। इसलिए डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने दलितों के सामाजिक आन्दोलन से अत्यधिक बल राजनीति क्रांति एवं भागीदारी पर दिया। अम्बेडकर ने ब्रोकेन मैन (बिखरे हुए लोग अर्थात्-दलित) की राजनीति की। इसके माध्यम से उनको संगठित एवं राजनीतिक रूप से शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया। अम्बेडकर ने दलितों में सामाजिक चेतना के साथ-साथ राजनीतिक चेतना पर भी जोर दिया। क्योंकि उनका मानना था कि राजनीतिक चेतना के माध्यम से ही दलितों को भारतीय सामाजिक व्यवस्था में उचित स्थान प्राप्त हो सकता है।

* एम.फिल. (सबाल्टर्न स्टडीज), सामाजिक बहिष्करण एवं समावेशी नीति अध्ययन केन्द्र, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

मॉण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों के परिप्रेक्ष्य में साउथबरो (1918) कमेटी का भारत आगमन हुआ। अम्बेडकर को इसमें गवाही देने के लिए बुलाया गया। उन्होंने दलितों की जनसंख्या के अनुसार पृथक् निर्वाचन क्षेत्र और सुरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों की मांग की। यह उनका पहला राजनीतिक प्रवेश था। 1919 के अधिनियम में पहली बार दलित वर्गों के राजनैतिक संवैधानिक अस्तित्व को मान्यता प्रदान की गई। 1919 के अधिनियम की समीक्षा के लिए ब्रिटिश सरकार ने सर जान साइमन की अध्यक्षता में समिति बनाई, जो 3 फरवरी, 1928 को भारत आयी। कांग्रेस पार्टी ने इसका बहिष्कार किया। लेकिन डॉ. अम्बेडकर ने दलितों के लिए शुभ अवसर समझकर साइमन कमीशन की सहायता करने के लिए 3 अगस्त, 1928 को 'बाम्बे प्रोविंसियल कमेटी' में निर्वाचित हुए और दलितों के लिए अम्बेडकर ने पृथक् निर्वाचक मंडल की मांग साइमन कमीशन के सामने रखी।

ब्रिटिश सरकार ने भारत की समस्याओं पर विचार करने के लिए कई भारतीय नेताओं को आमंत्रित किया। इसके लिए लंदन में तीन सम्मेलन हुए, जिन्हें राउण्ड टेबल कान्फ्रेंस या गोलमेज सम्मेलन कहाँ जाता है। इसमें सभी दलों तथा अल्पसंख्यक संगठन के नेताओं को आमंत्रित किया गया। डॉ. अम्बेडकर तथा रायबहादुर श्रीनिवासन भी दलित वर्गों का प्रतिनिधित्व करने के लिए आमंत्रित हुए। गोलमेज सम्मेलन दलितों के लिए अद्वितीय घटना थी, क्योंकि भारत की भावी राजनीतिक व्यवस्था में दलितों की राय भी ली जा रही थी तथा यहाँ के संविधान में उनके विचारों का भी समावेश होगा। लगभग 2000 वर्षों से लगातार शोषित रहने के पश्चात् यह शुभ अवसर आया, जिसका प्रतिनिधित्व डॉ. अम्बेडकर ने किया। दलितों की समस्याओं एवं मांगों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ले जाने का श्रेय उन्हीं को था। इस प्रकार दलितों की समस्याओं का अब यथार्थवादी विश्लेषण होने लगा था।

गोलमेज सम्मेलन में अम्बेडकर ने दलितों के लिए पृथक् निर्वाचक मंडल की मांग की। लेकिन गांधी ने इसका विरोध किया। इस प्रश्न पर दलितों में भी एक राय न थी। एम.सी. राजा का गुट संयुक्त निर्वाचक मंडल का समर्थक था तथा फरवरी, 1932 में ऑल इंडिया डिप्रेस्ड क्लासेज कान्फ्रेंस की कार्यसमिति ने अम्बेडकर की पृथक् निर्वाचक मंडल की मांग की आलोचना करके हिन्दुओं के साथ ऐसे संयुक्त निर्वाचक मंडल का एकमत से समर्थन किया, जिसमें आबादी के आधार पर सीटों के आरक्षण का प्रावधान हों। एम0सी0राजा और हिन्दू महासभा के अध्यक्ष बी.एस. मुंजे के बीच इस आशय का एक समझौता भी हुआ, जिसे 'राजा-मुंजे' समझौता कहाँ गया। इस प्रकार, निर्वाचक मंडल

के प्रश्न पर दलित नेतृत्व दो पक्षों में बँटा हुआ था।

ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैम्जे मैकडोनल्ड ने 17 अगस्त, 1932 को “कम्यूनल अवार्ड” की घोषणा की। इसके अनुसार दलितों के लिए पृथक् निर्वाचक मंडल को मान्यता दी गई। तथा उन्हें 71 स्थान दिया गया। (मद्रास 18, मध्य बंबई 10, संयुक्त प्रांत 12, बिहार-उड़ीसा 7, मध्य प्रांत 10, आसाम 4, बंबई (सिंध के निकले जाने पर)-10) लेकिन गांधी और अन्य हिन्दू नेताओं ने कम्यूनल अवार्ड में दलितों के राजनीतिक प्रतिनिधित्व को स्वीकार नहीं किया। गांधी इसके विरुद्ध आमरण अनशन पर बैठ गये और अंततः नैतिक दबाव के कारण अम्बेडकर को समझौता करना पड़ा, जिसे ‘पूना पैक्ट’ (24 सितम्बर, 1932) कहाँ जाता है। हिन्दुओं की तरफ से पं. मदनमोहन मालवीय और दलितों की तरफ से अम्बेडकर ने इस समझौते पर हस्ताक्षर किया। इसमें दलितों के लिए 148 आरक्षित सीटों (पंजाब 8, मध्य प्रांत 20, बंगाल 30, बिहार-उड़ीसा 18, आसाम 7, संयुक्त प्रांत 20, मद्रास 30, बम्बई और सिंध 15) की व्यवस्था थी तथा संयुक्त निर्वाचक मंडल को स्वीकार किया गया। पूना-पैक्ट ने दलित राजनीति की दिशा ही बदल दी। अम्बेडकर ने एक स्वतंत्र एवं आत्मनिर्भर दलित राजनीति की परिकल्पना की थी। लेकिन गांधी और अन्य हिन्दू नेताओं ने आरक्षण की व्यवस्था लागू कर दलित राजनीति को जातिवाद एवं स्वार्थ पर आधारित कर दिया। यही से कांग्रेस ने दलितों को आरक्षण के माध्यम से अपना वोट-बैंक बनाना आरम्भ कर दिया। इसके लिए उन्होंने बिहार के दलित नेता बाबू जगजीवन राम के नेतृत्व में मार्च, 1935 में ऑल इंडिया डिप्रेस्ड क्लासेज लीग का गठन किया। इस प्रकार, दलित कभी-भी हिन्दूवादी सामाजिक व्यवस्था से निकल ही नहीं पाये तथा अम्बेडकर के संपूर्ण प्रयास पर पानी फिर गया।

पूना-पैक्ट के परिणाम ने डॉ. अम्बेडकर को सोचने पर मजबूर कर दिया। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि आरक्षण और संयुक्त प्रतिनिधित्व की व्यवस्था से सामाजिक परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। उनके अनुसार यह व्यवस्था ब्राह्मणवाद और पूँजीवाद को ही मजबूत करने वाली है। अतः इस समय हम अम्बेडकर के राजनीतिक विचारों में एक बड़ा परिवर्तन देखते हैं। वे जातीय संघर्ष को नकार करके वर्ग-संघर्ष को स्वीकार करते हैं। वे साम्राज्यवाद, ब्राह्मणवाद और पूँजीवाद को भारत तथा दलितों का मुख्य शत्रु मानते हैं और 15 अगस्त, 1936 को ‘इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी’ के गठन की घोषणा करके दलित वर्गों को वर्ग-हित और वर्ग-चेतना के आधार पर संगठित करने का प्रयास करते हैं। 12 और 13 फरवरी, 1938 को मानमाऊ में जी.आई.पी. रेलवे के एक दलित सम्मेलन में

भाषण दिया कि दलितों को अब वर्ग-हित और वर्ग-चेतना पर आधारित राजनीतिक पार्टी में शामिल होना चाहिए। इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी के समर्थन में दिए गए इस भाषण में कहाँ कि यह पहला अवसर है, जब दलित अपनी आर्थिक समस्याओं पर विचार करने के लिए मजदूरों के रूप में एकत्र हुए हैं। अम्बेडकर ने आगे कहाँ कि इस देश के मजदूरों के सिर्फ दो शत्रु हैं—एक ब्राह्मणवाद और दूसरा पूँजीवाद। उन्होंने ब्राह्मणवाद को परिभाषित करते हुए कहा कि इसका अर्थ ब्राह्मणों के विशेषाधिकार और उनकी सत्ता नहीं है, बल्कि यह स्वतंत्रता, समानता और बंधुता के सिद्धांत को न मानना है। इस अर्थ में, उन्होंने कहाँ कि यह सभी वर्गों में व्याप्त है, सिर्फ ब्राह्मणों तक सीमित नहीं है, हालाँकि वे इसके उद्भव हैं। अम्बेडकर ने श्रमिक राजनीति के रूप में दलित राजनीति की परिकल्पना की और उसे सामाजिक परिवर्तन के लक्ष्य पर आधारित किया। 1937 के चुनाव में उनकी पार्टी को बम्बई में शानदार सफलता मिली, उसने 15 आरक्षित सीटों में से 11 सीटें जीत ली तथा मध्य प्रांत और बरार में भी 9 आरक्षित सीटों में से पार्टी ने 4 स्थान जीत लिए।

इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी को भंग करने के बाद अम्बेडकर सामाजिक क्षेत्र में काम करने के उद्देश्य से 1942 में 'ऑल इंडिया शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन' का गठन किया, जिसके संविधान में दलितों को 'हिन्दुओं से विशिष्ट और अलग' करार दिया गया था। इसके माध्यम से अम्बेडकर ने राजनीतिक गतिविधियाँ भी आरम्भ कीं। लेकिन 1946 के चुनाव में 'शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन' ने दलितों के लिए आरक्षित सीटों में से मात्र 2 सीटें जीती। इन सीटों पर कांग्रेस पार्टी का बहुमत रहा। सत्ता के हस्तांतरण के तौर-तरीकों पर बातचीत के लिए 1946 में जो कैबिनेट मिशन भारत आया, वह चुनाव परिणामों के आधार पर इस परिणाम पर पहुँचा कि सही अर्थों में दलितों का प्रतिनिधित्व कांग्रेस कर रही थी और सभी आधिकारिक मंचों पर आगे भी करती रहेंगी। इसका अम्बेडकर ने भारी विरोध किया और उन्होंने अपना जनसमर्थन साबित करने के लिए एक लोक सत्याग्रह शुरू कर दिया। लेकिन संगठन के अभाव के कारण यह आन्दोलन बहुत दिनों तक नहीं चला।

स्वतंत्रता के पूर्व संविधान सभा की एक सीट पर अम्बेडकर का नाम पेश करके और फिर उनको संविधान प्रारूप समिति की अध्यक्षता के लिए चुनकर कांग्रेस ने दलित प्रतिरोध को शांत करने का प्रयास किया तथा स्वतंत्रता के पश्चात् अम्बेडकर को नेहरू मंत्रिमंडल में विधिमंत्री बनाया गया। इस प्रकार, कांग्रेस ने दलित तुष्टिकरण की नीति अपनाकर दलितों को लुभाने का प्रयास किया। लेकिन हिन्दू कोड बिल के प्रश्न पर डॉ.

अम्बेडकर ने 27 सितम्बर, 1951 को मंत्रीमण्डल से त्याग-पत्र दे दिया।

व्यस्क मताधिकार के आधार पर भारत के पहले आम चुनावों के पूर्व शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन ने प्रजा सोशलिस्ट पार्टी से सहयोग किया और नवम्बर, 1951 में उसके साथ चुनाव समझौता कर लिया। उन्होंने लोगों से अनुरोध किया कि वे प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के उम्मीदवारों को वोट दें। वे पूछते थे “लोग ऐसा क्यों सोचते हैं कि मैं राजनीति में भी अछूत बना रहूँ।” शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन ने आम चुनावों के लिए अपना चुनाव घोषणा-पत्र जारी किया। इसमें कुछ सिद्धांत रखे गए भारतीय समानता के अधिकारी हैं, शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन प्रत्येक नागरिक को धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता दिलायेगा, सरकार लोगों का अभाव और भय निवारण करेगी, स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृ-भाव कायम करने का प्रयत्न करेगी, राष्ट्र द्वारा राष्ट्र का, वर्ग द्वारा वर्ग का और मानव द्वारा मानव का दलन और शोषण सहन नहीं करेंगी और संसदीय लोकतंत्र पर चलेगी। चुनाव घोषणा-पत्र में कश्मीर का बँटवारा किये जाने की वकालत की गई थी। पार्टी बीमा कंपनियों के राष्ट्रीयकरण और नशाबंदी निवारण के पक्ष में थी।

जनवरी, 1952 में डॉ. अम्बेडकर लोकसभा का चुनाव हार गए। उनकी पराजय बड़ी महत्वपूर्ण थी। इसका कारण उनकी यह दलील बड़ी थी कि कश्मीर का विभाजन कर दिया जाए। बम्बई का वह भाषण जो उन्होंने मुसलमानों की सभा में दिया था कि मुसलमानों के लिए पृथक् मतदान की व्यवस्था की जाए तथा जनता के बीच कोई सकारात्मक भाषण को न देना और सबसे अधिक एक असंगठित पार्टी भी उनकी हार का कारण बनी। मार्च, 1952 के अंत में डॉ. अम्बेडकर राज्यसभा के लिए चुन लिये गये। मई, 1954 में भी उन्होंने लोकसभा के लिए उप-चुनाव लड़ा लेकिन वे हार गये।

इस प्रकार अम्बेडकर युग में डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने दलित राजनीति को आत्मनिर्भर एवं शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया, लेकिन संगठन के अभाव तथा कांग्रेस के प्रभाव के कारण अम्बेडकर का नेतृत्व महाराष्ट्र तथा महार जाति तक ही सीमित रह गया। लेकिन फिर भी अम्बेडकर ने दलित वर्गों में राजनीतिक चेतन का संचार किया। उन्होंने ही दलितों को सपना दिखाया कि दलित भी उच्च पद प्राप्त कर सकता है और अंततः अम्बेडकर की राजनीति का मुख्य उद्देश्य यह था कि जातिविहिन समाज की स्थापना करके एक समतामूलक समाज की स्थापना की जाये।

उत्तर-अम्बेडकर युग की दलित राजनीति डॉ अम्बेडकर की राजनीति से बिल्कुल विपरीत हैं। इस युग की दलित राजनीति जातिवाद, राजनीतिक अवसरवाद, वोट-बैंक

तथा जोड़-तोड़ की राजनीति है।

अम्बेडकर ने अपनी मृत्यु से पूर्व एक नई पार्टी “रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया” बनाने की परिकल्पना की, लेकिन असामायिक मृत्यु के कारण वह रिपब्लिकन पार्टी की स्थापना का स्वप्न पूरा होते नहीं देख सके। लेकिन अम्बेडकर के अनुयायियों द्वारा रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया की विधिवत स्थापना 1957 में की गई। इसका गठन शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन में से किया गया जो भारत के दलित और पिछड़े वर्गों का नेतृत्व करता था। ‘नीली टोपी, नीला झंडा और हाथी का निशान’ रिपब्लिकन पार्टी की पहचान बन गया तथा इसका नारा ‘जय भीम’ था। इस पार्टी ने महाराष्ट्र के साथ-साथ उत्तर प्रदेश में भी अपने पैर जमा लिए। 1962 के चुनावों में उत्तर प्रदेश में विधान सभा में 11 तथा लोकसभा में 4 सीटें रिपब्लिकन पार्टी ने जीता। रिपब्लिकन पार्टी ने जातिवाद की राजनीति के बजाय वर्ग-संघर्ष की राजनीति की। उसने दलित मजदूर और किसानों की समस्याओं को उठाया। 1964 में पार्टी ने संपूर्ण भारत में भूमि-सत्याग्रह किए, जो दो महिने तक चला। इस सत्याग्रह में पार्टी की मुख्य माँग भूमि का राष्ट्रीयकरण करने और बेकार पड़ी भूमि को भूमिहीन किसानों को देने की थी। केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीयकरण की माँग को अस्वीकार कर दिया, लेकिन बेकार पड़ी भूमि भूमिहीन किसानों को देने के निर्देश उसे सभी राज्य सरकारों को देने के लिए बाध्य होना पड़ा।

रिपब्लिकन पार्टी की सफलता से कांग्रेस भयभीत हो गई। क्योंकि उसकी तरफ दलित वर्ग आकर्षित होने लगा था। इसलिए कांग्रेस ने रिपब्लिकन पार्टी के प्रभावशाली नेताओं को सत्ता प्रलोभन देकर पार्टी को विभाजित कर दिया। सबसे पहले 1966 में आर.डी. भण्डारे कांग्रेस में चले गये। उसके बाद 1978 तक पार्टी के टूटने का सिलसिला जारी रहा। स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि रिपब्लिकन पार्टी 12 धड़ों में बंट गई। रिपब्लिकन पार्टी ने जितने मजबूत नेता थे सबने धीरे-धीरे कांग्रेस पार्टी से नाता जोड़ लिया। राष्ट्रीय अध्यक्ष दादा साहेब गायकवाड़ के मृत्यु के बाद पार्टी के पास कोई सशक्त राजनीतिक नेतृत्व नहीं था और धीरे-धीरे यह पतन की ओर अग्रसर हो गई। इस प्रकार, अम्बेडकर की मृत्यु के बाद शोषित-दलित क्रांति का जो आह्वान था, वह टूटता-बिखरता गया।

रिपब्लिकन पार्टी के पतन के बाद कांग्रेस पुनः दलित वर्गों को अपने साथ जोड़ने में सफल हो गई। 1971 में इंदिरा गांधी ने बाबू जगजीवन राम को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया। उसी वर्ष मध्यावधि चुनाव हुए और कांग्रेस ने ‘गरीबी हटाओ’ के नारे के सहारे पुनः सत्ता प्राप्त कर ली। 20-सूत्रीय कार्यक्रम और हदबंदी कानून लागू कर कांग्रेस ने

दलित वर्गों को लुभाया और दलित राजनीति अपने अस्तित्व को खो बैठी। रिपब्लिकन पार्टी के पतन के पश्चात् दलित राजनीति में शून्य की स्थिति आ गई, इस शून्यता को भरा कांशीराम ने।

कांशीराम ने सर्वप्रथम अपना ध्यान सरकारी और सार्वजनिक क्षेत्रों में कार्यरत लगभग 20 लाख कर्मचारियों पर किया। इन कर्मचारियों को संगठित कर उनके बलबूते पर राजनीति में आने की दूरगामी योजना कांशीराम के मस्तिष्क में उपजी। अपनी इसी योजना के तहत उन्होंने 6 दिसम्बर, 1978 को 'बामसेफ' (बैकवर्ड एण्ड मॉइनोरिटी कम्युनिटीज इम्प्लाइज फेडरेशन) का गठन किया। हालाँकि उन्होंने घोषणा की कि यह संगठन सरकारी कर्मचारियों का है, जिसका राजनीति से कोई सरोकार नहीं होगा, लेकिन उनका असली उद्देश्य राजनीति में प्रादुर्भाव का ही था। इस संगठन को आगे बढ़ाने के लिए आर्थिक रूप से हर सदस्य से उनके वेतन का एक प्रतिशत संगठन देने का नियम बनाया। सर्वोच्च सत्ता प्राप्त करने के उद्देश्य से कांशीराम कहते थे कि "राजनीति सत्ता के लिए होती है और सत्ता संघर्ष के बिना नहीं मिलती।" शुरू से ही उनका आरोप रहा कि 15 प्रतिशत सवर्ण 85 प्रतिशत बहुजन समाज (अनुसूचित जाति, जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग तथा अल्पसंख्यक वर्ग) पर शासन कर उनका शोषण कर रहे हैं। कांशीराम ने जातिविहीन और समता वाले समाज की परिकल्पना तथा राजनीतिक महत्वाकांक्षा को लेकर 1981 में डी.एस.-4 (दलित शोषित समाज संघर्ष समिति) का गठन किया। इसी संगठन के अंतर्गत 6 दिसम्बर, 1983 से उन्होंने आन्दोलनों की शुरुआत की थी। इस आन्दोलन को उन्होंने 'समता और सम्मान के लिए संघर्ष' का नारा दिया। देश के पाँच कोने कन्याकुमारी, कोहिमा, कारगिल, पुरी तथा पोरबंदर से उन्होंने दो-दो दिन के अंतराल के बाद दिल्ली तक साइकिल यात्राएँ आयोजित की, जिससे उन्होंने देशव्यापी प्रचार पाया। कांशीराम में पूना-पैक्ट के पचास वर्ष पूरे होने पर 24 सितम्बर, 1982 से अपने राजनीतिक अभियान की शुरुआत की थी। इस वर्ष देश के चारों कोनों से पूना धिक्कार रैली निकाली गई, जो पूना में जाकर समाप्त हुई। इस रैली ने दलित वर्गों में ब्राह्मणवाद के खिलाफ उस चेतना को उभार दिया, जिसे समय और तात्कालिक राजनीतिक दबावों ने दबा दिया था। कांशीराम इसके माध्यम से घोर दलितवाद उभारना चाहते थे, जो सीधे-सीधे कांग्रेस के खिलाफ हों, उनका उद्देश्य कांग्रेस के खिलाफ दलित वर्गों में गुस्सा उतारना था, जिससे कांग्रेस का दलित वोट-बैंक खत्म हो सकें। उनका राजनीतिक लक्ष्य कांग्रेस को कमजोर कर रिपब्लिकन पार्टी का विकल्प खड़ा करना था।

कांशीराम ने 14 अप्रैल, 1984 को 'बहुजन समाज पार्टी' की स्थापना की। इस पार्टी का प्रमुख लक्ष्य सर्वोच्च सत्ता प्राप्त करना था। कांशीराम के अनुसार, हाथों से (कांग्रेस चुनाव चिन्ह) या फूलों से (भाजपाई चुनाव चिन्ह) हाथ (बसपा-चुनाव चिन्ह) को नहीं रोका जा सकता। वह अपनी मंजिल पर जाकर ही दम लेगा। कांशीराम ने बसपा का विकास जाति के उभार, जाति की अस्मिता और जाति की राजनीति पर किया।

महाराष्ट्र के दलित वर्गों ने कांशीराम को स्वीकार नहीं किया। लेकिन उत्तर प्रदेश में उन्हें सफलता मिल गई। कांशीराम ने अपने राजनीतिक आन्दोलनों को तीन सिद्धांतों पर विकसित किया। पहला जातीय सम्मान, दूसरा भागीदारी और तीसरा वोट को लुटने और बिकने से बचाना। जाति उन्मूलन को उन्होंने अपना ध्यय नहीं बनाया, वरन् जाति के उभार को अपनी राजनीति के केन्द्र में रखा। सामाजिक परिवर्तन और नवजागरण के जननायकों को उन्होंने जातीय सम्मान और स्वाभीमान आन्दोलन से जोड़ने की मुहिम चलाई। शाहूजी महाराज, ज्योतिबा फूले, नारायण स्वामी, पेरियार, डॉ. अम्बेडकर, कबीर, झलकारी बाई, बिजली पासी, सावित्री बाई फूले इत्यादि विभूतियों को उन्होंने दलित वर्गों का नायक बना दिया।

भागीदारी आन्दोलन के तहत कांशीराम ने नारा दिया—वोट हमारा राज तुम्हारा नहीं चलेगा। यह कांग्रेस के लिए चेतावनी थी। कांग्रेस दलितों, पिछड़ों और मुसलमानों के वोट पर राज कर रही थी। इस वोट बैंक को कांग्रेस से अलग करने के लिए उन्होंने भागीदारी का सवाल उठाया। उन्होंने यह समझाया कि बहुजन समाज की समाज की संख्या 85 प्रतिशत हैं, लेकिन 15 प्रतिशत अल्प आबादी वाला सवर्ण वर्ग उस पर राज कर रहा है। उन्होंने जिसकी जितनी संख्या भारी, उतनी उसकी भागीदारी का तर्क देते हुए आबादी के अनुपात से बहुजन समाज की भागीदारी की मांग की। पिछड़ी जातियों के लिए मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने की मांग को भी उन्होंने अपने आन्दोलनों में शामिल किया और रैलियाँ की। भागीदारी आन्दोलन ने एक तरह से जातीय तुष्टिकरण की राजनीति विकसित की। यह नई तरह का जातीय जागरण था, जिसने दलित जातियों में जातीय ध्रुवीकरण की चेतना पैदा की। इस क्रम में कांशीराम ने चमार जाति को छोड़कर, चूँकि उसका ध्रुवीकरण को चुका था, पासी, वाल्मीकि, धोबी, कोरी आदि अन्य जातियों के अलग-अलग सम्मेलन किए।

तीसरे सिद्धांत के तहत कांशीराम ने दलित वर्गों को वोट की कीमत का बोध कराया। उन्होंने कहाँ कि लोकतंत्र में वोटों की ताकत से शासक पैदा होता है। उन्होंने

कहाँ कि दलित वर्ग इसलिए शासक नहीं बन सका, क्योंकि उसने अपने वोट की ताकत नहीं पहचाना तथा उसने उसका सही इस्तेमाल नहीं किया। उसका वोट खरीदा जाता रहा और जूटा जाता रहा। उन्होंने बताया कि कांग्रेस का लम्बा राज दलित वर्ग के वोट पर ही चलता रहा है। उन्होंने यह अहसास पैदा किया कि यदि दलित वर्ग को शासक वर्ग बनाना है, तो उसे अपने वोट को न लुटने देना है, न बेचना है। उसे उसका उपयोग बहुजन समाज पार्टी के उम्मीदवारों को देकर अपनी ताकत बनाना है।

90 के दशक में कांशीराम के राजनीतिक आन्दोलन ने उत्तर प्रदेश में दलित वर्गों में नया उत्साह भर दिया था। दलित वर्गों का इतना विशाल ध्रुवीकरण इससे पहले नहीं देखा गया। बामसेफ के समय से कांशीराम के सहयोगी राजबहादुर, दीनानाथ भास्कर, आर.के. चौधरी और मायावती लोकप्रिय नेता बन चुके थे। 1993 में कांशीराम ने समाजवादी पार्टी अध्यक्ष मुलायम सिंह यादव से राजनीतिक गठबंधन किया और उसी वर्ष के विधानसभा चुनाव को सपा-बसपा गठबंधन ने मिलकर लड़े। इस चुनाव में सपा-बसपा गठबंधन को आश्चर्यजनक सफलता मिली। दोनों ने 178 सीटें जीतीं, जिसमें बसपा ने 69 सीटें जीतीं। 1993 में सपा-बसपा गठबंधन की उत्तर-प्रदेश में पहली सरकार बनी और मुलायम सिंह यादव उसके मुख्यमंत्री बने।

सरकार बनने के बाद से ही सपा-बसपा गठबंधन को तोड़ने की कोशिशें शुरू हो गई थीं। भाजपा ने मायावती को मुख्यमंत्री बनाने का लोभ देकर सत्ता का सूत्र अपने हाथों में रखने में सफलता हासिल कर ली। 1993 से मई, 1995 तक कांशीराम और मायावती ने मुलायम सिंह यादव और उनकी सरकार के प्रति अनर्गल टिप्पणियाँ करके राजनीतिक तनाव पैदा कर दिया। परिणामतः गठबंधन टूटा और जून, 1995 में मायावती भाजपा के समर्थन से मुख्यमंत्री बन गईं। भाजपा और बसपा का गठबंधन अम्बेडकर के विचारों के बिल्कुल विपरीत था, जहाँ अम्बेडकर जीवनभर, ब्राह्मणवाद और हिन्दुत्व का विरोध किया वहीं बसपा ने इसे आधार बनाकर तथा इसका प्रयोग अपनी सत्ता प्राप्ति के लिए किया। 1995 के बाद कांशीराम और मायावती ने हर राजनीतिक कदम भाजपा की नीतियों के समर्थन में उठाया। कहीं मौन रहकर और कहीं बालेकर उन्होंने भाजपा का पक्ष लिया। वे संविधान समीक्ष के मुद्दे पर मौन रहें और मायावती गुजरात में नरसंहार के बाद हुए चुनावों में भाजपा के लिए वोट मांगने गईं। दूसरी बार 1997 में और तीसरी बार 2002 में मायावती भाजपा के सहयोग और समर्थन से मुख्यमंत्री बनीं। उसके पास अपना न कोई राजनीतिक कार्यक्रम था और न कोई आर्थिक दर्शन-सिवाय

मनुवाद-मनुवाद चिल्लाकर जातीय संघर्ष का वातावरण पैदा करने के। इसलिए उन्होंने भाजपा के एजेंडे को ही पूरी तरह लागू किया।

इसी तरह पहले और वर्तमान में भी सत्ता शीर्ष प्राप्त करने के लिए दलित नेतृत्व एवं दलित राजनीति की सौदेबाजी की गई। सत्ता शीर्ष पर पहुँचने वाले पार्टियों ने राजनीतिक परिस्थितियों के दबाव में दलित प्रतिनिधि को नेतृत्व देने की रणनीति अपनाई। बिहार में भोला पासवान शास्त्री को कुछ दिनों के लिए 1968 से 1972 के बीच तक तीन बार मुख्यमंत्री बनने का मौका मिला। इसके बाद 1977 में जब कर्पूरी ठाकुर ने पिछड़े वर्गों के लिए मुंगेरी लाल आयोग की अनुशंसाओं को लागू कर आरक्षण देने का फैसला लिया, तब उन्हें सत्ता से हटाकर दलित प्रतिनिधि राम सुन्दर दास को मुख्यमंत्री बनाया गया। इसी प्रकार राजनीतिक सौदेबाजी करने के लिए रामविलास पासवान ने 'लोक जनशक्ति पार्टी' का गठन किया, कभी भारी बहुमत से जीतने का रिकार्ड बनाने वाले रामविलास पासवान ने कभी कांग्रेस से गठबंधन किया, तो कभी भाजपा से। जो कि दोनों ही पार्टियाँ अम्बेडकर विचारधारा के अनुसार ब्राह्मणवादी है। वर्तमान समय में नीतिश कुमार ने दलित राजनीति को एक और बड़े विभाजन पर आधारित कर दिया—दलित और महादलित। इससे एक बात बहुत स्पष्ट है कि सत्ता की प्रतिस्पर्धा में सक्रिय किसी पार्टी का राजनीतिक उद्देश्य दलित प्रतिनिधि को नेतृत्व देना नहीं है, बल्कि राजनीतिक परिस्थितियों और जातीय उभार उनके प्रतिनिधित्व की सीमा तक करता है।

इस प्रकार, उत्तर-अम्बेडकर युग में दलित राजनीति का इतिहास एक परतंत्र इतिहास रहा है। परतंत्र का अर्थ इस मायने में है कि दलित राजनीति एवं नेतृत्व स्वतंत्र एवं सार्वभौमिक नहीं बन सका। दलित राजनीति गठबंधन पर आश्रित ही रहा, यह अलग बात है कि 2007 में बसपा को उत्तर प्रदेश में पूर्ण बहुमत मिला, लेकिन 2014 के आम चुनाव में एक सीट भी उसे नहीं मिली। दलित राजनीति के इतिहास में पहले उसका इस्तेमाल कांग्रेस ने वोट बैंक के लिए किया तथा इसके पश्चात् भाजपा ने गठबंधन के माध्यम से दलित राजनीति को अपनी सत्ता प्राप्ति के लिए इस्तेमाल किया। दलित पार्टियों ने केवल जातिवाद को उभार करके तथा आरक्षण के धरातल पर दलितों को लामबंद किया तथा उनके वोट का इस्तेमाल अपनी सत्ता प्राप्ति के लिए लगाया। इस प्रकार, कहाँ जा सकता है कि उत्तर-अम्बेडकर युग में दलित राजनीति आत्मनिर्भर एवं स्वतंत्र बन ही नहीं पायी। और वर्तमान समय में कोई भी सार्वभौमिक दलित राजनेता या दल नहीं है।

अंततः डॉ. भीमराव अम्बेडकर जहाँ स्वतंत्र एवं आत्मनिर्भर दलित राजनीति का विकास करना चाहते थे, वह लक्ष्य कोई भी दलित राजनेता नहीं प्राप्त कर सका तथा डॉ. अम्बेडकर की राजनीति का मुख्य उद्देश्य जाति-व्यवस्था को खत्म करना था, वहीं बाद के दलित राजनेता ने जातिवाद को उभारकर दलित राजनीति को जाति आधारित कर दिया है। अतः डॉ. भीमराव अम्बेडकर का जातिविहिन, समरस एवं समतामूलक समाज की स्थापना का स्वप्न अधूरा ही रह गया है।

संदर्भ :

1. अकेला, ए.आर. (संपा.) कांशीराम के साक्षात्कार, मानव पब्लिकेशंस, प्रा0लि0, दिल्ली, 2001
2. अग्रवाल, श्याम मोहन. गांधी एवं अम्बेडकर का राजनीतिक एवं सामाजिक चिंतन, रितु पब्लिकेशंस, जयपुर, 1998
3. दुबे, अभय कुमार (संपा.) आधुनिकता के आइने में दलित, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
4. दुसाध, एच.एल. आदि-भारत मुक्ति बहुजन समाज (एक पत्र गोसाईंजी के नाम), राजधानी बुक सर्विस, दिल्ली, 2000
5. खंडेला, मानचन्द्र. भारतीय राजनीति का बदलता परिदृश्य, अविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2005
6. किशोर राज. दलित राजनीति की समस्याएँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
7. माइकल, एस.एम. (संपा.) आधुनिक भारत में दलित-दृष्टि एवं मूल्य अनुवादक-विजय कुमार पंत, रावत पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2010
8. ओमवेट, गेल. दलित और प्रजातान्त्रिक क्रान्ति उपनिवेशीय भारत में डॉ. अम्बेडकर एवं दलित आन्दोलन, अनुवाद-नरेश भार्गव, रावत पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2009
9. परमार, तारा, अनुसूचित जातियों के हितों के लिए डॉ. अम्बेडकर की भूमिका, पब्लिकेशंस स्कीम, जयपुर, 1999
10. प्रसाद, राजेन्द्र (संपा.) मुक्ति के अग्रदूत बाबू जगजीवन राम, भाषण-संग्रह, भाग-1, जगजीवन आश्रम ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2006
11. शेखर बंधोपाध्याय. पलासी से विभाजन तक आधुनिक भारत का इतिहास, अनुवाद-नरेश, 'नदीम' ओरियंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, 2013
12. सीतारामय्या, डॉ. पट्टाभि. कांग्रेस का इतिहास (1885-1935) भाग-1, हिन्दी संपादक-श्रीहरिभाऊ उपाध्याय, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 209
13. सरकार, सुमित. आधुनिक भारत 1885-1947, अनुवादक-सुशीला डोभाल, राजकुमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010

14. सिन्हा, सच्चिदानंद, लोकतंत्र की चुनौतियाँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005
15. सिन्हा, मनोज (संपा.) समकालीन भारत : एक परिचय, ओरियंट ब्लैक स्वॉन, नई दिल्ली, 2012
16. यादव, रामजी (संपा.) अम्बेडकर संवयन, भाग-1, 2, भारतीय पुस्तक परिषद्, नई दिल्ली, 2012
17. Paswan, Dr. Amarnath and Komaraiah (Editors). Indian, Journal of Dalit of tribal Studies, Vol. 1, Issue. 1 and 2.
